कई प्रकार से यहाँ तक कि राष्ट्रवादियों की भाषा में, गाँवों को देशीय जीवन का प्रामाणिक प्रतिनिधि मानने का विचार इसी तरह की कल्पना से लिया गया था। यद्यपि गांधी ब्रिटिश भारत के गाँवों की अवनति का गुणगान करने के प्रति बहुत सचेत थे, इसके बावजूद उन्होंने कथिक सरलता और ग्रामीण जीवन की प्रामाणिकता को ख्याति दी, उनकी ऐसी छवि थी जो भारतीय गाँव की औपनिवेशिक व्याख्या के अनुरूप थी। गाँवों के ह्रास को औपनिवेशिक शासन के परिणाम के रूप में देखा गया और इसीलिए राजनीतिकि स्वतंत्रता के साथ ही साथ गाँवों का पुनर्निर्माण पुनरूद्धार की महत्वपूर्ण प्रक्रिया थी। (देखें जोधका 2002)।

स्वतंत्रता के बाद भी "गाँवों" को भारतीय समाज की आधारित इकाई माना जाता रहा। शैक्षिक परंपरा में गाँवों का अध्ययन संभवत: भारत में कार्यरत समाजशास्त्रियों और सामाजिक मानवविज्ञानियों के बीच सर्वाधिक प्रचलित था। उन्होंने भारत के गाँवों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को केंद्रित करते हुए बड़ी संख्या में अध्ययन किए। इनमें से अधिकांश अध्ययनों का प्रकाशन 1950 और 1960 के दशकों के दौरान हुआ। इन "ग्रामीण अध्ययनों" ने भारत में समाजशास्त्र और सामाजिक मानवविज्ञान के विषयों को सम्मान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सामान्यत: प्रत्यक्ष रूप से क्षेत्रीय कार्य पर आधारित लेखे-जोखे के आधार पर जो ज्यादातर एक ही गाँव से लिए गए थे, सामाजिक मानवविज्ञानियों ने ग्रामीण लोगों के सामाजिक संबंधों, संस्थागत तरीके, विश्वासों एवं मूल्य प्रणाली की संरचना को केंद्रबिंदु बनाया। इन अध्ययनों के प्रकाशन से भारतीय सामाजिक विज्ञान के इतिहास में एक नए चरण की शुरुआत को पहचान मिली। पहली बार उन्होंने भारतीय समाज की क्षेत्रीय कार्य पर आधारित समझ की प्रासंगिकता प्रदर्शित की या जिसे भारत के "क्षेत्रीय विचार" के रूप में जाना गया जो तत्कालीन भारत की प्रभावशाली "पुस्तकीय विचार" से भिन्न थी जो प्राचीन हिंदू धर्मग्रंथों में भारतीय विद्याशास्त्रियों और प्राच्यविद्याशास्त्रियों द्वारा विकसित थी।

3.3 संदर्भ

औपनिवेशिक प्रशासकों/मानवजाति विज्ञानियों के बाद वह "छोटा" सामाजिक मानवशास्त्र का ही विषय था जिसने विस्तृत रूप से 1950 और 1960 के दौरान भारतीय गाँवों का अध्ययन किया। ग्रामीण सामाजिक जीवन में यह नई रुचि पाश्चात्य अकादमी में किसानों के जीवन पर अध्ययन में उभरी नई-नई रुचि का सीधा प्रसार थी।

युद्ध के बाद उपनिवेशन के समाप्त होने के परिणामस्वरूप तथाकथित "नए राज्यों" के उद्गम का सामाजिक विज्ञान में अनुसंधान की प्राथमिकताओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव था। नए तौर पर उभरे "तीसरे विश्व" के देशों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता उनकी जनसंख्या के एक बड़े अनुपात का स्थिर कृषि क्षेत्र। पर निर्भरता थी। इसीलिए औद्योगीकरण के बावजूद नए राजनीतिक शासकों के लिए उनकी कार्यसूची का एक प्रमुख मद उनकी "पिछड़ी" और स्थिर कृषि अर्थव्यवस्था थी। यद्यपि कार्यनीतियों और प्राथमिकताओं में फर्क था, तथापि "आधुनिकता" और विकास अधिकांश तीसरी दुनिया के देशों के प्रमुख सामान्य कार्यक्रम बन गए।

कृषि-संबंधों की वर्तमान संरचना को समझना और उन्हें रूपांतरित करने के तरीकों और मार्गों का पता लगाना विकास अध्ययन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राथमिकताओं के रूप में पहचाने गए। यह इस संदर्भ मे था कि "कृषि" को सामाजिक मानवविज्ञान के विषय में सबसे प्रचलित पाया गया। उस समय जब आदिम जनजातियाँ या तो लुप्त होने की प्रक्रिया में थीं या पहले ही लुप्त हो चुकी थीं, "कृषक-वर्ग" की खोज ने सामाजिक मानवविज्ञान की शाखा को जीवन का नया अध्याय प्रदान किया।

"ग्रामीण समुदाय" को एशिया में कृषि अर्थव्यवस्था के सामाजिक आधार के रूप में पहचाना गया। रेडफील्ड के "कृषक अध्ययन" (पीजैंट स्टडीज़) रेडफील्ड, 1965 और भारतीय "ग्राम